परिवर्तन विमर्श

बनारस से एक पहल

'परिवर्तन विमर्श' समाजों की शक्ति के स्रोतों को जीवंत और ऊर्जामय बनाने का सत्याग्रह है.

यह विमर्श वैचारिक चौखटों से बाहर जन-आन्दोलनों की भूमि (वैचारिक, सामाजिक, दार्शनिक, राजनीतिक) पर बहुजन-समाज (सामान्य जन) की दृष्टि से आकार ले इसकी कोशिश करेगा. यह विविध समाजों का, उनके आन्दोलन /जन-आन्दोलनों के कार्यकर्ताओं का, समाज से सरोकार रखने वाले लोगों, कलाकारों, कार्यकर्ताओं, नेतृत्व आदि का आम लोगों से खुले संवाद का स्थान है.

यह देश बहुजन समाज का रहा है. अलग-अलग समयों पर ब्राह्मणवादी सत्ता, मुगलों की सत्ता और अंग्रेजों की सत्ता ने इस देश को बहुजन समाज से छीना है. आज़ाद भारत में इस पर पूँजी , ब्राह्मण(सवर्ण व मुस्लिम प्रभु वर्ग) और आयातित के ज्ञान ने कब्ज़ा कर लिया. परिवर्तन का अर्थ है आर्थिक गतिविधियों में पूँजी का महत्त्व बुनियादी तौर पर कम करना, समाज में ऊँच-नीच की व्यवस्थाओं को ख़त्म करना और लोकविद्या और विश्वविद्यालय की विद्या के बीच की ऊँच-नीच को ख़त्म करना.

बहुजन-समाज के शक्ति के स्रोत, अच्छे जीवन की उनकी अवधारणा और उनकी दार्शनिक परम्परायें, उन्हें ऐसे परिवर्तन में अग्रणी भूमिका निभाने के काबिल बनातीं हैं. दूसरे शब्दों में कहें तो इस परिवर्तन के पक्ष में किसान-समाज, कारीगरों और मिस्त्रियों की जमातें, मजदूर-वर्ग, आदिवासी-समाज, स्त्रियाँ, छोटा-छोटा धंधा करने वाले ये सब सक्रिय होने चाहिए.

यह परिवर्तन विमर्श दर्शन से लेकर रोजमर्रे के सवालों पर चिंतन और संवाद को आकार देने का स्थान है.

विमर्श का फलक

1990 के आस-पास से सोवियत यूनियन के टूटने, वैश्वीकरण के विस्तार पाने, सूचना (इंटरनेट) उद्योग के दिन दूना रात चौगुना आगे बढ़ने तथा दूसरे खाड़ी युद्ध के साथ युद्ध क्षेत्र में सर्वथा नए तौर तरीकों के विकसित होने से शुरू होकर आज तक पूँजीवाद और साम्राज्यवाद ने नई-नई वैचारिक स्थापनाओं, नई संपर्क-सूचना प्रौद्योगिकी और नई राज्य व्यवस्थाओं व वैश्विक बाजार के जरिये लूट और शोषण में बड़ी बढ़ोत्तरी की है. प्रचलित लोकतांत्रिक, समाजवादी और सांप्रदायिक व्यवस्थाओं, सभी ने इसी प्रक्रिया में ज़ोर भरा है. यूरोप से उपजी परिवर्तन की विचारधाराएं, सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों स्तरों पर, इस प्रक्रिया से मुकाबला करने में सर्वथा नाकामयाब रही हैं,. इसका मतलब यह है कि शोषण के जाल से मुकाबले की दिक्कतों को केवल सांगठनिक स्तर पर नहीं समझा जा सकता, बल्कि यह एक नए विमर्श की मांग कर रहा है.

हाल ही में शुरू हुए रूस-यूक्रेन युद्ध ने राष्ट्रीय और अंतरर्राष्ट्रीय राजनीति के आधार और समीकरणों को नया मोड़ दे दिया है, जिसके चलते प्रचलित राज्यसत्ता की अवधारणाएं बड़े पैमाने पर प्रभावित हुई हैं. कुछ बड़े देशों ने पुनर्निर्माण के लिए सभ्यता, संस्कृति, इतिहास जैसी पहचान को एक ऐसा आधार बनाने की पेशकश की हैं, जो वैश्विक शक्तियों के नए सिरे से पुनर्संगठन का संकेत दे रही हैं. यह एक नई लेकिन प्रभावी बनती धारा है. इस धारा के चलते रूस, चीन, इजराइल, तुर्की और भारत अपने देश की सभ्यता और संस्कृति के गौरव शिखरों को और इसके फैलाव को एक दावे के रूप में पेश करते नज़र आते हैं. इन देशों के नेता अपने-अपने देशों में तानाशाह की पहचान रखते हैं और वैश्विक मंच पर पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों (मुख्यतः इंग्लैण्ड, अमेरिका, यूरोप आदि) के विरोध की भाषा बोलते नज़र आ रहे हैं. परिवर्तन के कार्यकर्त्ता के लिए यह पेचीदगी भरी स्थिति है. प्रगतिशील और सेकुलर धारा के कार्यकर्ताओं के सामने असमंजस की स्थिति है. एक नए विमर्श की ज़रूरत ये भी चाहते हैं.

शासक वर्गों के द्वारा चलाई गई बहुजन समाज की लूट अबाधित रखने पर उपरोक्त दोनों ही खेमों की गहरी सहमति है. हमारे देश में फ़िलहाल इन दोनों खेमों के बीच किसान आन्दोलन ने ऐसी जगह पैदा की है, जहाँ किसान आंदोलन के कार्यकर्ता तथा गाँधी से लेकर मार्क्स तक सभी के अनुयायी एक साथ शामिल हैं. यह एक ऐतिहासिक मौका देता है एक तीसरे रास्ते के निर्माण का. एक ऐसे रास्ते के निर्माण का, जिसमें देश का बहुजन समाज (लोकविद्या-समाज) अपने ज्ञान और विरासत के ठोस जीवनमूल्यों के आधार पर नवनिर्माण का रास्ता बनाए. हमें इसके लिए अपने देश और दुनिया को बहुजन समाज की दृष्टि से समझने की शुरुआत करनी होगी.

परिवर्तनकारी ऊर्जा के स्रोत

इस सदी के शुरू होने के थोड़ा पहले से ही आम लोगों के ज्ञान यानि लोकविद्या को नये सिरे से मान्यता मिलना शुरू हुई है. जिसके चलते और इस दौर के जन-आन्दोलनों (हमारे देश में किसान आन्दोलन, दक्षिण अमेरिका के

इक्वाडोर और बोलीविया देशों के आदिवासी आन्दोलन आदि) के चलते उन नई परिस्थितियों का निर्माण हुआ है, जिनमें बहुजन-समाज की सामाजिक शक्ति के वे रूप सामने आये हैं, जो स्वायत्त और सहजीवन/ भाईचारा की समाज-व्यवस्था के लिए नैतिक बुनियाद बना रहे हैं. शासक वर्गों के उपरोक्त दोनों ही खेमों की लूट से मोर्चा लेने का रास्ता बनाते भी देखे जा सकते हैं.

परिवर्तन विमर्श के आधार

बड़े पैमाने पर शोषित और बहिष्कृत लोग, यानी किसान, मज़दूर, कारीगर, स्त्रियां, आदिवासी और ठेले गुमटी वाले, कालेज या विश्वविद्यालय नहीं गए होते हैं. हमें इनकी चेतना के स्वरुप को समझना होगा क्योंकि इन्हीं की चेतना की ताकत पर परिवर्तन के आंदोलन बनते हैं और मुक्ति के रास्ते निखारे जाते हैं. ये लोग वर्गों के रूप में नहीं पाए जाते तथापि समाज के रूप में ही वे अपनी पहचान करते हैं और उसी रूप में अस्तित्व भी रखते हैं. आधुनिक राज्यसत्ताएं समाजों की बलि पर राष्ट्र के निर्माण (विकास) की राह बनाती रही हैं.

आधुनिक यूरोप की राजनीतिक विचारधाराएं राजनीतिक समाज (बुर्जुआ और मजदूर वर्ग की प्रधानता में बने समाज और राज्य) के विकास के संदर्भ में विकसित हुई हैं. लोकतंत्र, लोकतांत्रिक-समाजवाद और वैज्ञानिक-समाजवाद ऐसी ही विचारधाराएं हैं. इन विचारधाराओं के भारतीय संस्करणों में भी समाजों की विरासत और ज्ञान को कोई स्थान नहीं दिया जाता रहा है. ऐसे में सार्वजनिक और सामाजिक क्षेत्रों के बीच सतत् संघर्ष की स्थिति बनी रही. बहुजन-समाज की सक्रियता के आधारों में एक महत्वपूर्ण खम्भा उनकी सामाजिक शक्ति का है. किसान आन्दोलन में ही नहीं बल्कि जल-जंगल-ज़मीन के आन्दोलन और सामाजिक न्याय आन्दोलन में भी इसी सामाजिक शक्ति का उभार रहा है.

महत्वपूर्ण बात यह है कि उनकी यह सामाजिक शक्ति केवल जातिगत नहीं है और न वोट-शक्ति में है, बल्कि उनके जीवन-दर्शन, ज्ञान, विरासत और भूमिका में है, यह एक नए परिवर्तन विमर्श को आकार देने की शक्ति है. यह समझना महत्वपूर्ण है कि मानवीय चेतना में वैयक्तिक चेतना और सामाजिक चेतना का अन्योन्याश्रित संबंध निहित होता है. ज़मीनी कार्यकर्त्ता चेतना की यह समझ अक्सर रखते हैं. समस्या ज़्यादा पढ़े-लिखे लोगों के साथ है, जो यूरोपीय विचारों का सन्दर्भ लिए बगैर सोच नहीं पाते. भारतीय समाज लघु समाजों (सोशल फार्मेशन) से बना है और लघु समाज लघुतर समाजों से. इस प्रक्रिया को जारी रखें तो अंत में व्यक्ति पर पहुँच जायेंगे। समाज और व्यक्ति मानवीय वास्तविकता के एक दूसरे के पूरक दो छोर हैं. पूरब के देशों में समाज के ऐसे ढाँचे विकसित हुए जिनमें स्वायत्तता, सत्ता की वितरित व्यवस्था, विविधता का सम्मान और भाईचारा जैसे मूल्यों को वरीयता मिलती रही.

विमर्श के शुरूआती विषय

1. **21 वीं सदी की चुनौतियां :** (आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक सांस्कृतिक, दार्शनिक आदि क्षेत्रों में)
   - **आर्थिक : कारपोरेट राज से मुक्ति के रास्ते**
     - वितरित अर्थ व्यवस्था के मायने
     - उत्पादन के साधनों का सामाजीकरण : राष्ट्रीयकरण, सहकारिता, ट्रस्टीशिप और अब
     - खाद्य स्वराज (खाद्य संप्रभुता)
     - बहुजन-समाज में आर्थिक व्यवस्थाओं की परम्परायें
     - किसान आन्दोलन, जलवायु और रोज़गार
   - **राजनीतिक : पूंजीवादी राजनीति से मुक्ति के रास्ते**
     - राष्ट्रराज्य को सभ्यतागत राज्य के उदय से चुनौती और नई संभावनायें
     - डेमोक्रेसी से नेटवर्क
     - सूचना की दुनिया में स्वराज के अर्थ
     - बहुजन-समाज की राज परम्परायें
     - स्वायत्तता बनाम स्वतंत्रता
   - **बौद्धिक सत्याग्रह : एक रचनात्मक कार्य**
     - हर व्यक्ति ज्ञानी है बनाम बहुजन-समाज अज्ञानी है
     - ज्ञान की इजारेदारी और बहुजन-समाज की ज्ञान परम्परायें
     - समग्र का सम्यक ज्ञान बनाम टुकड़ों में विशेष ज्ञान
     - ज्ञान : तर्क, न्याय, जीवनमूल्य और सत्ता के विविध प्रकार
     - कला, संवेदना, ज्ञान और समाज